इकाई 2 प्राच्यविद् कथन (आरंभिक चिंतन) और औपनिवेशिक आधुनिकता

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 आधुनिक विद्वता की भिन्न-भिन्न श्रेणियाँ

- 2.2.1 नव-गांधीवादी समीक्षा
- 2.2.2 पराश्रित अध्ययन विचारधारा
- 2.2.3 संयुक्त राज्य में मानव वैज्ञानिक अध्ययन
- 2.2.4 एडवर्ड सैयद का प्राच्यवाद

2.3 राष्ट्रवाद और औपनिवेशिक आधुनिकता

- 2.3.1 "मतभेद" के रूप में राष्ट्रवाद
- 2.3.2 महिलाओं के बारे में राष्ट्र की चिन्ताएँ
- **2.3.3** - ——— & ———
- **2.3.4** भिन्न अनुक्रम dl? भिन्न आधुनिकता

2.4 राष्ट्रवाद, इतिहास और विजित ज्ञान

- 2.4.1 उन्नीसवीं शताब्दी में भारत का निर्माण
- 2.4.2 राष्ट्रवादी कल्पना और भारत का इतिहास
- 2.4.3 प्राच्यवाद और उपनिवेश का अपना ज्ञान

2.5 सारांश

2.6 अभ्यास प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

इस इकाई में प्राच्यवाद (आरंभिक चिंतन) की अवधारणा और आधुनिकता का प्रश्न तथा भारत में उसकी औपनिवेशिक जड़ों को समझने का प्रयास किया जाएगा। यह अपेक्षाकृत ऐसा नया क्षेत्र है जिसने पूर्व औपनिवेशिक समाजों के लिए और उपनिवेशी इतिहास के पुराने क्षेत्र का पर्याप्त रूप में पुनर्निर्माण किया है, यूरोप के इतिहास में भी अब उन तरीकों में निरंतर बढ़ती हुई जागरूकता स्पष्ट दिखाई देती है जिनमें औपनिवेशिक प्रतिरोध ने यूरोप की छवि को आकार दिया है। इस इकाई में हम मुख्य रूप से भारतीय उप-महाद्वीप के इतिहास पर विचार करेंगे।

यद्यपि इस इकाई में केवल औपनिवेशिक अवधि पर चर्चा की गई है, फिर भी, यह समझना आवश्यक है कि यह ऐसा क्षेत्र है जो निश्चित रूप से वर्तमान संदर्भ से बना है। पिछले कुछ दशकों में, खासतौर पर 1980 के दशक से इस क्षेत्र ने कार्य और विचारशीलता का पूर्णतः नया ढाँचा उत्पन्न किया है जिसपर प्रायः विद्वानों में तीखी बहस हुई है। यह उस अवधि के दौरान था जब हमारी औपनिवेशिक आधुनिकता के सम्पूर्ण प्रश्न से तीव्र और नई बहस छिड़ी है। अतः भारतीय उप-महाद्वीप पर बुद्धिजीवी जगत में इस विकास के बारे में अत्यधिक महत्वपूर्ण क्या है, वह है कि यह उस इतिहास में समाविष्ट राजनीति की जानकारी पर फोकस करता है जबकि उपनिवेशी इतिहास के पूर्ववर्ती लेखन में यह कुछ

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

भी नहीं था। बहुत महत्वपूर्ण तरीके में यह उस तरीके की पृष्ठभूमिका का उल्लेख करता है "(हमारा अपना)" इतिहास और हमने स्वयं अपने बारे में अपने ज्ञान द्वारा तैयार किया गया है और उसे विजित ज्ञान द्वारा उत्पन्न की गई श्रेणियों के माध्यम से समझा गया है।

आइए, हम अपने वास्तविक विषयवस्तु पर चर्चा करने से पहले प्रारम्भिक प्रेक्षण करें। भारतीय इतिहास आज वह नहीं है जिसे हम अभी तक इतिहास की अपनी पाठ्यपुस्तकों से जानते हैं। नए परिणामों ने उस इतिहास के उन पहलुओं को उजागर किया है जो अभी तक अंधकार के आवरण में थे। तब हमारा अभिप्राय क्या है, जब हम कहते हैं कुछ पहलू "अंधकार के आवरण में" हैं? यह वैसा नहीं है, कुछ पूर्णतः नए "तथ्यों" को खोज से निकाला गया है। नए तथ्य निस्संदेह प्रकट होते हैं या ज्ञात तथ्यों की जानकारी होती है, बहुधा उन्हें महत्वहीन समझा जाता है, उन्हें नया अर्थ मिल जाता है क्योंकि जिस तरीके में हमने उन्हें इस इतिहास में देखा था, अब बदल गया है। जैसा कि हम बाद में इस इकाई में देखेंगे, हमारे अतीत के बारे में कुछ प्रकार की अदूषित सच्चाई के भंडार के रूप में इतिहास के विचार इन परिणामों के प्रकाश में स्वयं समस्या हो गयी हैं।

2.2 आधुनिक विद्वता की भिन्न-भिन्न श्रेणियाँ

विद्वता की कम से कम चार श्रेणियाँ हैं जो 1980 के दशक से साथ आई हैं, जो इस रूपान्तरण के मूल में रही हैं।

2.2.1 नव-गांधीवादी समीक्षा

पहले स्थान में यह 1980 के दशक के प्रारंभ से आधुनिकता की पुरानी गांधीवादी समीक्षा पुनः सक्रिय हुई है। इस श्रेणी में उन विद्वानों का कार्य प्रमुख रहा है, जैसे आशीष नन्दी, वीणादास और पर्यावरण और विज्ञान आन्दोलनों में सक्रियतावादी विद्वान, जैसे क्लोड एल्वारेस और वंदना शिवा। इस वर्ग के विद्वानों की अधिकांश समीक्षा विज्ञान और प्रासंगिकता की दृष्टि से थी, जिसे उन्होंने आधुनिकता के नियंत्रणकारी विचारों के वैचारिक समकक्ष माना, साथ ही, नेहरुवादी राज्य द्वारा अपनाए गए विकास की धारणा को भी लिया। यद्यपि इस श्रेणी के सभी विद्वान स्पष्ट रूप से गांधीवादी स्थिति से सम्बद्ध नहीं थे, फिर भी उन्होंने गांधीजी की आधुनिक पश्चिमी सभ्यता का और मानव स्वतंत्रता की शर्तों के रूप में विज्ञान और कारण में उसके विश्वास का भी समर्थन किया। आशीष नन्दी ने अपना मुख्य प्रहार आधुनिकता के इस वैचारिकता अर्थात् विज्ञान, कारण और विकास पर किया। उन्होंने उस समीक्षा में स्वतः राष्ट्र-राज्य को भी शामिल किया, जिसे वह आधुनिकता के संस्थागत मूर्त रूप के रूप में देखता है, ऐसी संस्था जो सदा लोक प्रचलित विश्वासों और रहन-सहन के तरीकों का असहिष्णु रहा है। नन्दी आधुनिक राष्ट्र-राज्य की परियोजना में सजातीयकरण की ओर, सांस्कृतिक जाति संहार, और कुछ ही तक जीवन कम करने की इच्छा की ओर सतत आन्दोलन देखता है जो सरलता से परिभाष्य और विनिमेय श्रेणियाँ हैं। इस संबंध में उनका मुख्य तर्क है कि दक्षिण एशियाई संदर्भ में एक ही प्रकार की धारणाएँ मुख्य रूप से अस्थिर रही हैं और यह केवल आधुनिक राष्ट्र-राज्य के प्रारम्भ के साथ होता है कि अकेली श्रेणियाँ, जैसे हिन्दू और मुस्लिम में पहचान निश्चित करने के लिए बनाई गई है। वह इस तथ्य का उल्लेख करता है कि आज भी ऐसे सैकड़ों समुदाय हैं जो हिन्दू और इस्लाम दोनों के तत्वों को मिलाते हैं और जिन्हें अपने आपको स्पष्ट और विशिष्ट श्रेणियों में "वर्गीकरण करने" में कठिनाई होती है। इस प्रकार के तर्क को उदाहरण के लिए, के. सुरेश सिंह जैसे विद्वान के मानव वैज्ञानिक सर्वेक्षण द्वारा प्रमाणित किया गया है।

2.2.2 पराश्रित अध्ययन विचारधारा

भारतीय इतिहास लेखन के पराश्रित अध्ययन विचारधारा (इसके बाद पराश्रित इतिहासकार) के रूप में

उल्लिखित) के कार्य में द्वितीय श्रेणी की पहचान की जा सकती है। इस विचारधारा ने भी 1980 के दशक के प्रारंभ में अपनी पहली सार्वजनिक-उपस्थिति प्रकट की। यद्यपि इसका कार्य 1970 के दशक के आखिर से आरंभ हुआ। इतिहासकारों और कुछ राजनीति वैज्ञानिकों का यह दल मुख्यतया वामपंथी राजनीतिक पृष्ठभूमि से आया था और उनका अधिकांश प्रारंभिक कार्य उन समस्याओं की निरंतरता थी जिसे उन्होंने 1970 के दशक में माओवादी राजनीतिक पद्धति के प्रभाव से विकसित किया था। इस विचारधारा के विद्वानों में महत्वपूर्ण इतिहासकार रणजीत गुहा, ज्ञानेन्द्र पांडेय, शाहिद अमीन, डेविड हार्डीमैन और दीपेश चक्रवर्ती तथा राजनीति विज्ञानी जैसे पार्थ चटर्जी और कुछ सीमा तक सुदीप्त कविराज थे। एक उभयनिष्ठ डोरी, जो आशीषनन्दी जैसे विद्वानों से मध्यवर्ती इतिहासकारों के प्रारंभिक कार्य के प्रयास से जोड़ती है, उसका संबंध राष्ट्रवाद की समीक्षा राष्ट्रवादी इतिहासलेखन तथा प्रचलित चेतना से था। 1980 के दशक में प्रकाशित पुस्तक खंडों की श्रृंखला के माध्यम से पराश्रित इतिहासकारों ने राष्ट्रवादी इतिहासलेखन की मुख्य समीक्षा आरंभ की। इस "राष्ट्र का इतिहास" में सभी इतिहासकारों को सम्मिलित किया। इस समीक्षा से उन्होंने यह ज्ञात करने का प्रयास किया जिसे रणजीत गुहा ने "इतिहास की अल्प ध्वनि" कहा था। उन्होंने उन्हें समझने का प्रयास किया जिन्होंने औपनिवेशिक अवधि की विचारधारा में राष्ट्रवादी या किसानों के संघर्ष में भाग लिया था, उन्होंने भाग क्यों लिया, उनकी प्रेरणा और सहभागिता के क्या रूप थे। दूसरे शब्दों में, उन्होंने पराश्रित वर्गों की व्यक्तिगत निष्ठा और एजेन्सी-स्वायत्तता प्राप्त करने का प्रयास किया। शब्द "पराश्रित" जैसा कि आप में से अधिकांश जानते होंगे, इटली के मार्क्सवादी एण्टोलियो ग्रामस्की के लेखन में आया है। प्रारंभिक पराश्रित अध्ययनों में यह शब्द वर्ग (क्लास) जैसे अन्य अधिक प्रतिबंधक श्रेणियों से अंतर करने के लिए प्रयुक्त किया गया था। "पराश्रित" का अर्थ केवल "अधीनस्थ" है और भिन्न-भिन्न प्रकार के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अधीनता स्पष्ट करने के लिए प्रयुक्त हो सकता है। जैसा कि गुहा ने प्रथम खण्ड के अपने "आमुख" में कहा, इसमें दक्षिण एशियाई समाज में अधीनता भी शामिल हो सकती है, चाहे इसे वर्ग, जाति, आयु, लिंग और आफिस या किसी अन्य प्रकार में व्यक्त किया गया है।

2.2.3 संयुक्त राज्य में मानव वैज्ञानिक अध्ययन

तीसरी श्रेणी बेर्नार्ड कोहन जैसे मानव वैज्ञानिकों के क्षेत्र अध्ययनों के फील्ड से आती है। ये मानवविज्ञानी अधिकतर संयुक्त राज्य में हैं। बेर्नार्ड कोहन का कार्य अधिक लम्बी अवधि का है, यह 1950 की दशाब्दी के मध्य से आरंभ होती है। वह भारत के उपनिवेशी ज्ञान से संबंधित प्रश्नों पर लिखता रहा है और जिस तरीके में इस ज्ञान ने इसी समाज को रूपांतरित किया है, उसके अध्ययन में यह दावा किया गया है। उनके अनुसंधानों ने यह भी दिखाया है कि ये ज्ञान उपनिवेशी विश्व में राजनीतिक व्यक्तिपरकता को कैसे बनाती हैं। उसके मार्गनिर्देशन में यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागों से विद्वानों की पूरी पीढ़ी, जैसे निकोलास डिर्क्स, अर्जुन अप्पाडोराई और अन्य ने यह दिखाने के लिए उपनिवेशी ज्ञान की भिन्न-भिन्न रूपात्मकताओं पर कार्य किया है कि यह उपनिवेशी परियोजना और सत्ता में पूरी तरह से कैसे अंतःस्थापित हुआ। यह ऐसा ज्ञान था जिसने भारत में सभ्य करने वाले ब्रिटेन के मिशन का बौद्धिक औचित्य प्रदान किया। जबकि रणजीत गुहा के शब्दों में "जाति का सरकारी दृष्टिकोण, हिन्दुत्व का क्रिश्चियन मिशिनरी दृष्टिकोण और भारतीय समाज का प्राच्यवादी दृष्टिकोण, स्थायी, कालातीत, असीमित और आंतरिक रूप से अविभेदीकृत के रूप में अखंड है .... इन सभी को सत्ता और ज्ञान की जटिलता द्वारा उत्पन्न किया गया था।" (रणजीत गुहा, "इंट्रोडक्शन" टू बेर्नार्ड कोहन (1988) एन एन्थ्रोपोलोजेस्ट अंमंग हिस्टोरियन्स एण्ड अंदर एसेज, पृष्ठ XIX) 1980 के दशक के दौरान यह मानव वैज्ञानिक कार्य भिन्न भिन्न प्रकार के ढाँचे में पुनः सामने आया जो स्पष्टतया स्वतः हमारी चर्चा के क्षेत्र में है। 1984 में प्रकाशित एक प्रभावशाली निबंध "दी सेन्सस सोशल स्ट्रक्चर एण्ड आब्जक्टिफिकेशन इन साउथ एशिया" में कोहन ने उदाहरण के लिए दिखाया, उपनिवेशी जनगणनाओं

ने भारत के बारे में न केवल ज्ञान उत्पन्न किया है अपितु ऐसा भारत भी बनाया है जो आवश्यक रूप से वैसा भारत है जो उपनिवेशी शासन के आगमन से पहले था।

2.2.4 एडवर्ड सैयद का प्राच्यवाद

अंत में, फिलिस्तीनी अमेरिकी विद्वान एडवर्ड सैयद का कार्य है जिसने कार्य के इन दो भिन्न भिन्न निकायों को संयोजन करना संभव बनाया है। 1978 में सैयद का प्रशंसनीय क्षेत्र प्राच्यवाद प्रकाशित हुआ। इसमें भूतपूर्व उपनिवेशों में और पश्चिम में अप्रवासी समुदायों में भी पश्चिम की चलती आ रही रिक्तता का विचार करने के भिन्न भिन्न प्रयासों को भारी प्रोत्साहन मिला। इस क्षेत्र में जो तब 1980 के दशक के लगभग मध्य में बहुत प्रभावशाली हुआ, सैयद ने दिखाया कि पूर्व या "प्राच्य" की कुछ संरचनाएँ यूरोप की अपनी छवि के लिए कैसे महत्वपूर्ण रही है। उन्होंने प्रमुख साहित्यिक पुस्तकों के अध्ययन से और राजनीतिक प्रलेखों, संसदीय भाषणों और अन्य स्रोतों से भी दिखाया, प्राच्य असाधारण यूरोपीय संरचना – पिछड़ा, अंधविश्वास, बर्बर और एक ओर अप्रासंगिक तो दूसरी ओर विदेशज और आदिकालीन कैसे था। फिर भी, इस बात पर बल देते हैं कि यह नहीं मान लेना चाहिए कि "प्राच्यवाद की संरचना केवल असत्यताओं का अथवा मिथकों के पुलन्दे से अधिक कुछ नहीं है," इसे "सिद्धान्त और पद्धति संस्था" के रूप में समझा जाना चाहिए। वे कहते हैं, "ज्ञान के इस भंडार का इतिहास निस्संदेह, अधिक पुराना है, परन्तु "अठारहवीं शताब्दी के बाद की अवधि में ऐसे जटिल ओरिएण्ट का आविर्भाव हुआ जो मानवजाति सृष्टि के बारे में विद्वत-जगत में अध्ययन के लिए संग्रहालयों में प्रदर्शन के लिए, उपनिवेशी कार्यालय में पुनर्निर्माण के लिए, मानव विज्ञान, जीव विज्ञान, भाषा विज्ञान, प्रजाति और ऐतिहासिक शोध निबंधों में सैद्धान्तिक सचित्र उदाहरण के लिए विकास, विद्रोह, सांस्कृतिक व्यक्तित्व, राष्ट्रीय अथवा धार्मिक महापुरुषों के समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों के उदाहरण के लिए उपयुक्त था।"

यह सरलता से देखा जा सकता है कि उपर्युक्त विद्वता की सभी श्रेणियाँ ज्ञान के उस ढाँचे को चुनौती देने के लिए भिन्न भिन्न तरीके में आरंभ हो चुके थे, जो हमारे इतिहास के बारे में हमारी समझ को प्रभावित किए हुए थे। प्रारम्भिक पराश्रित अध्ययन विचारधारा के अपवाद के साथ सभी अन्य पश्चिमी ज्ञान, विशेषकर विजित ज्ञान के बारे में स्पष्ट रूप से आधारभूत प्रश्न पूछने लगे। यहाँ तक कि पराश्रित इतिहासकारों के मामले में, राष्ट्रवादियों और उनके अभिजातवर्गीय इतिहास लेखन के संबंध में उनके कठोर प्रश्नों और पराश्रित स्वायत्तता की तलाश उन्हें अंततः कुछ अत्यंत संवेदनशील प्रश्नों में ले गया। जिसमें राष्ट्रवाद पश्चिमी ज्ञान द्वारा संरचित किया गया था। इस अवस्था में यह भी उल्लेख करना आवश्यक होगा कि ये विभिन्न और असमान श्रेणियाँ साथ-साथ आ सकी क्योंकि यूरोप और संयुक्त राज्य अमेरिका में एक अन्य बौद्धिक विकास हो रहा था। यह था, जिसे, मौटे तौर पर, संरचनावादी पश्चधारा कह सकते हैं या जिसे पश्च आधुनिकतावाद कहा जाता है। इसने पश्चिमी दर्शन की सम्पूर्ण परम्परा की गहन आंतरिक समीक्षा आरंभ की। फिर भी, यह हमारी तात्कालिक चिन्ता नहीं है और हम इसके कुछ प्रासंगिक पहलुओं पर बाद में चर्चा करेंगे। आइए, अब हम "औपनिवेशिक कथन सिद्धान्त" के मुख्य दावों का विश्लेषण करें।

2.3 राष्ट्रवाद और औपनिवेशिक आधुनिकता

यद्यपि हमने विचारधारा की उन मुख्य धाराओं को प्रस्तुत किया है जिन पर औपनिवेशिक इतिहास के नए प्रश्न उठे हैं, शेष इकाई में हमारा मुख्य विषय प्रमुखतया पराश्रित इतिहासकारों और विद्वानों, जैसे कविराज और नन्दी के कार्य होंगे। यह पराश्रित अध्ययनों के शीर्षक के अंतर्गत नहीं है। यहाँ पर हमारा संबंध मुख्यतया कार्य की राशि से है – जिसे सुमित सरकार ने "विलम्बित पराश्रित अध्ययन" कहा था।

प्राच्यवाद और औपनिवेशिक कथन के लिए सबसे अधिक स्पष्ट अभिव्यक्ति की आवश्यकता होती है। इसलिए औपनिवेशिक कथन और जिसे पार्थ चटर्जी ने "हमारी आधुनिकता" कहा है, उसके विशिष्ट लक्षणों का सम्यक विश्लेषण किया गया है। बेर्नार्ड के अनुवर्ती कार्य और उसके विद्यार्थियों जैसे निकलसन डिर्क और ज्ञान प्रकाश के कार्यों को भी मौटे तौर पर उसी श्रेणी के अंतर्गत रखा जा सकता है। अनुवर्ती चर्चा में हम कुछ प्रसंगों पर चर्चा करेंगे जो इस कार्य-राशि से उत्पन्न हुए हैं, न कि पूर्णतः काल क्रमानुसार।

हमने उल्लेख किया है कि पराश्रित अध्ययन के विद्वानों का पिछला कार्य पराश्रित स्वायत्तता की खोज से संबंधित था, अर्थात् पराश्रित चेतना और राष्ट्रवादी राजनीतिक अभिजात वर्गों से उनके विचलन के रूप में समझने का प्रयास कर रहे थे। यहाँ तक कि जब उन्होंने पश्चोयुक्त द्वारा संचालित आन्दोलनों में भी भाग लिया। इससे स्वाभाविक रूप से यह ज्ञात करना आवश्यक हुआ कि औपनिवेशिक दासता के संदर्भ में अभिजात वर्ग की चेतना कैसी बनी है अथवा बनाई गई थी। इसके परिणामस्वरूप राष्ट्रवादी कथन, उसकी संरचना और मान्यताओं की तलाश तथा पराश्रित चेतना के रूपों की भी तलाश हुई। इन तलाशों के दौरान दो बातें स्पष्ट होनी शुरू हुई। पहली, कि राष्ट्रवाद केवल एक ऐसी अखंड वैचारिक संरचना नहीं है जो प्रत्येक आधुनिक समाज में होनी चाहिए। इस तथ्य से स्थिति जटिल हो गई थी कि उपनिवेशवाद की एजेन्सी द्वारा समाजों में, जैसा कि भारत के समाजों में, आधुनिकता का समावेश किया गया था। इसलिए इस आधुनिक होने की इच्छा ने स्वतंत्र और स्वशासी, अर्थात् भारतीय होने की इच्छा उत्पन्न की। प्रारंभ के राष्ट्रवादी अभिजात वर्गों को अधीनता की शर्त पर अपनी राजनीति करने के लिए विवश किया गया, जहाँ उन्होंने साथ-साथ आधुनिक विचारधारा द्वारा सम्मिलित व्यापक स्वतंत्रता और समानता के सिद्धान्तों की आकांक्षा की और पश्चिम से अपने मतभेदों को स्पष्ट करना आवश्यक किया। दूसरा, परिणामस्वरूप यह भी स्पष्ट हो रहा था कि इसलिए राष्ट्रवाद ने भी अत्यंत कठिन और सृजनात्मक बौद्धिक हस्तक्षेप, राजनीति के युद्ध क्षेत्र में अपने मुख्य आधारतत्वों का निर्माण और सुरक्षण भी शामिल किया, जैसा कि पार्थ चटर्जी ने इसका उल्लेख किया। 1983 के प्रारंभ में एडर्सन के इस *क्लासिकी इमेजिण्ड कम्यूनिटीज* के प्रकाशन से अब अधिक समर्थनीय अन्वेषण की संभावनाएँ खुल गई कि राष्ट्रों की कल्पना कैसी की जाती है। प्रचुर अंतः दृष्टि सम्पन्न इस पुस्तक के प्रकाशन से यह विचार, कि राष्ट्रों के बारे में कोई वस्तु प्राकृतिक या शाश्वत है, समाप्त हो जाती है। एण्डर्सन ने कहा, सभी राष्ट्र समुदाय हैं। हमें इस आम भ्रांति को स्पष्ट करना चाहिए। जब एंडर्सम सुझाव देता है कि राष्ट्र काल्पनिक समुदाय है, वह यह नहीं कहता है कि इसलिए राष्ट्र अवास्तविक है। इसके विपरीत, वह दावा करता है कि वे वास्तविक है और ऐसा मनोभाव उत्पन्न करते हैं कि लोग इसके लिए मरने और मारने के लिए तैयार हो जाते हैं, क्योंकि उन्हें सामूहिक कल्पना के परिणामस्वरूप अस्तित्व में लाया जाता है।

2.3.1 "मतभेद" के रूप में राष्ट्रवाद

आइए, अब हम राष्ट्रवाद और औपनिवेशिक आधुनिकता की कुछ विशेषताओं पर विचार करें, जैसा कि हम आज उपर्युक्त विद्वानों के कार्यों से इसे जानते हैं। राष्ट्रत्व और स्व-शासन प्राप्त करना, जैसा कि राष्ट्रवादियों ने समझा, आधुनिक होने का मात्र तरीका था। वही वास्तव में तरीका था जिसे उन्होंने ढूढ़ा। बड़ा बौद्धिक प्रश्न जिसे उन्नीसवीं शताब्दी के बुद्धिजीवी वर्ग ने अपने आपसे किया था, "भारत पराधीन राष्ट्र क्यों हुआ?" ब्रिटेन नाम के छोटे से द्वीप राष्ट्र ने इस विशाल भूभाग पर अधिकार कैसे किया? अब हम जानते हैं कि उनका उत्तर था कि इसका कारण था कि भारत उपनिवेशी अधीनता के पूर्व संध्या पर आंतरिक रूप से विभाजित था। यहाँ सैकड़ों सैद्धान्तिक मतभेद और कलह, गहरे आंतरिक विभाजन थे जैसे जातियों में होते हैं और यहीं हैं जिनसे उपनिवेशन का प्रतिरोध करना देश के लिए असंभव था। आधुनिक विश्व में ये जारी रह सकते हैं। यदि हमें स्वतंत्र होना है तो हमें गहरे आंतरिक

विभाजनों पर विजय पानी होगी और स्व-शासन का निर्माण प्रारम्भ करना होगा जो अपने केवल राष्ट्रत्व के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता था, उसके लिए आधुनिक समाज मौजूद था। फिर भी, यह कुछ ऐसा था जिसने उभरते हुए राष्ट्रवादी अभिजात वर्ग को कठिनाई में रखा। वे आधुनिक कैसे हो सकते थे और फिर भी यह पश्चिमी उपनिवेशी मालिकों के तरीकों की नकल करना मात्र नहीं था। आधुनिक और राष्ट्रत्व के लिए संघर्षरत होने के कारण, अर्थात् उपनिवेशी शासन से मुक्ति के लिए अधीन राष्ट्र को चाहिए कि वह शासकों से अपने मतभेद स्पष्ट करें। यह ऐसी आधुनिकता थी जो पश्चिमी आधुनिकता से पूर्णतः भिन्न थी, जैसा उन्होंने इसे तब देखा था। "तब भारतीय आधुनिकता की खोज की गई थी भारत में राष्ट्रवाद का कथन ओजपूर्ण था। उदाहरण के लिए, अपने निबंध "दी सेन्सस एण्ड आब्जेक्टिविटेशन" में कोहन ने जवाहरलाल नेहरू के 1943 के लेख का उल्लेख किया जिसमें नेहरू ने कहा था, "मैं पूर्व और पश्चिम का विचित्र मिश्रण बन गया हूँ, सभी जगह अनुपयुक्त हो गया हूँ, घर पर कहीं का नहीं ..... वे दोनों (अर्थात् पूर्व और पश्चिम) में अंग हैं और यद्यपि वे पूर्व और पश्चिम दोनों में मेरी सहायता करते हैं, परन्तु वे आध्यात्मिक एकाकीपन की भावना भी उत्पन्न करते हैं .... मैं अजनबी हूँ और पश्चिम में विदेशी हूँ .... परन्तु अपने ही देश में भी कभी-कभी मैं प्रवासी की भावना का अनुभव करता हूँ।"

नेहरू की कृति से उपर्युक्त उद्धरण भारतीयों के आंतरिक संघर्षों को उजागर करता है, परन्तु ये सभी सामान्यतया उपनिवेश के बाद का राष्ट्रवाद है। यदि हम याद करें कि नेहरू सभी राष्ट्रवादियों में सबसे अधिक प्रबल आधुनिकवादी थे, तो हम सोच सकते हैं कि अन्य राष्ट्रवादी नेताओं की क्या स्थिति हुई होगी। वास्तव में, यह चिन्ता का विषय है कि उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में राष्ट्रवाद का औपचारिक उदय होने से काफी पहले यह भारतीय समाज के अभिजात वर्ग में स्पष्ट था। उदाहरण के लिए, आशीष नन्दी ने अपने प्रारम्भिक लेख में उल्लेख किया कि अठारहवीं शताब्दी के अंत में बंगाल में सती की घटनाओं के पुनः प्रचलन हो गया था। सांख्यिकीय साक्ष्य का विश्लेषण करते हुए उन्होंने कहा कि यह केवल इस अवधि में था कि "धार्मिक अनुष्ठानों को अचानक लोकप्रियता मिलने लगी।" इससे पहले पश्चिमी प्रभाव के कारण मनोवैज्ञानिक रूप से इसमें कमी आ गई थी। और धार्मिक अनुष्ठान लोकप्रिय हुए।" अतः इन समूहों ने "परम्परागत उच्च संस्कृति के प्रति स्वयं अपनी निष्ठा प्रदर्शित करने तथा अन्यों को भी दिखाने के लिए दबाव महसूस किया।" पश्चिमी सम्पर्क से बंगाली संभ्रान्त वर्ग सबसे अधिक निकट होने के कारण इस चिन्ता से अत्यधिक चिन्तित थे, वे अपने आपको भिन्न महसूस करने लगे। वास्तव में, आधुनिकता का प्रश्न अभी भी इस समय के एजेण्डा में नहीं था। उस संबंध में दीपेश चक्रवर्ती के बंगाल में प्रारंभिक अध्ययन राष्ट्रवादी महिलाओं के पारिवारिक जीवन और स्थिति से संबंधित है। यद्यपि उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के अधिकांश लेखक इस संबंध में स्पष्ट थे कि "इस देश की महिलाएँ 'असभ्य' आलसी, झगड़ालू" थी और इसलिए पारिवारिक खुशी के लिए खराब थी क्योंकि इनमें शिक्षा का अभाव था, उनका यह भी विश्वास था कि शिक्षा से महिलाओं में स्वतः अवांछित गुण आ सकते हैं। क्योंकि शिक्षा उन्हें "घमंडी, आलसी, उग्र और अवज्ञाकारी" बना सकती है।" यह आधुनिक शिक्षा और पश्चिमी विचारधारा के बारे में स्पष्टतः भय था, प्रारंभिक अभिजात वर्गों द्वारा ये विचार व्यक्त किए जा रहे थे।

2.3.2 महिलाओं के बारे में राष्ट्र की चिन्ताएँ

महिलाओं के बारे में चिन्ता नन्दी के सती की खोज और चक्रवर्ती की पारिवारिकता की खोज दोनों में दिखाई देती है। इसलिए पार्थ चटर्जी कहता है कि यह "महिलाओं का प्रश्न है", जो प्रमुख राष्ट्रवादी हस्तक्षेप का स्थान बना है। चटर्जी उल्लेख करते हैं जिसे वह यह सुझाव देने के लिए महिलाओं के प्रश्न का राष्ट्रवादी संकल्प कहता है कि जिस तरीके में राष्ट्रवाद ने अपने मतभेद को निर्दिष्ट करने का प्रयास किया, वह आंतरिक प्रभुसत्ता के क्षेत्र का सीमांकन द्वारा था। महिलाओं के प्रश्न के संबंध में

राष्ट्रवादी संकल्प क्या है? चटर्जी उल्लेख करता है कि उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में, राष्ट्रवाद के आविर्भाव से महिलाओं की प्रस्थिति पर केन्द्रित समाज सुधार के सभी महत्वपूर्ण प्रश्न (जैसे, विधवा विवाह, नारी शिक्षा, बालविवाह का विरोध आदि) सार्वजनिक कथन से लुप्त हो गए। उसका तर्क है कि यह इसलिए होता है क्योंकि राष्ट्रवाद "आंतरिक" और "बाह्य" क्षेत्र का सीमांकन कर और आंतरिक, सांस्कृतिक क्षेत्र में स्वयं को प्रभुसत्ता सम्पन्न घोषित कर अपनी यात्रा आरंभ करता है। बाह्य क्षेत्र में इसका अधीनीकरण एक निर्विवाद तथ्य है परन्तु संस्कृति के आंतरिक क्षेत्र में यह पूर्ण प्रभुसत्ता का दावा करता है। यह औपनिवेशिक राज्य से बातचीत के मामले में महिलाओं का प्रश्न नहीं उठाना चाहता है। दूसरी ओर, यह महिलाओं की पुरानी परिस्थिति से केवल संतुष्ट भी नहीं रहना चाहता है। बल्कि यह शिक्षित, सार्वजनिक जीवन में सक्रिय और साथ ही अपने पारिवारिक जीवन से पूर्णतः विज्ञ स्त्रियोंचित्त कर्त्तव्यों से पूर्णतः परिचित नई महिला का सृजन करने की योजना चलाना चाहता है। चटर्जी कहता है कि तब यह आंतरिक क्षेत्र ऐसा क्षेत्र बनता है जहाँ राष्ट्रवाद औपनिवेशिक, पश्चिमी आधुनिकता से अपना मतभेद स्पष्ट करना आरम्भ करता है। परन्तु सांस्कृतिक मतभेद के स्थिरीकरण से राष्ट्रवाद सदा आधुनिक नहीं होता है। वास्तव में, जैसा कि बहुत से अध्ययनों से ज्ञात होता है कि सांस्कृतिक मतभेद बहुधा "अकथनीय" क्षेत्र के समूहों के बीच आंतरिक असमानता के प्रश्न के महत्व का कम करने का तरीका बन जाता है। तब चटर्जी कहता है कि समस्या यह है कि राष्ट्रवादी परियोजना में विरोधाभास प्रकट होता हैः आधुनिकता के लिए इसकी खोज कुछ रूप में आधुनिकता के विरुद्ध संघर्ष से स्पष्ट होती है। "राष्ट्रीय क्या है, यह सदैव धर्मनिरपेक्ष और आधुनिक नहीं था और लोकप्रिय तथा लोकतांत्रिक था प्रायः परम्परागत और कभी कभी कट्टरतापूर्ण आधुनिकता विरोधी था।"

2.3.3 सांस्कृतिक विखंडन और उदारवादी विचारधारा

सुदीप कविराज औपनिवेशिक आधुनिकता की विशेषताओं के बारे में अपनी रूपरेखा के अन्य तीन रोचक पहलुओं का परिचय देता है। पहला, वह कहता है कि आधुनिक उपनिवेशी शिक्षा ने अंग्रेजी और देशी दोनों को साथ लाकर भारतीय सांस्कृतिक जीवन में विखंडन शुरू किया। इन भिन्न भिन्न क्षेत्रों में उत्पन्न समस्याएँ भी बहुत अलग अलग थी। अंग्रेजी भाषी विश्व व्यक्तिगत स्वतंत्रता के विचारों से अधिक सम्बद्ध थे, जबकि देशी भाषा-भाषी सरकार के रूप में लोकतन्त्र से कम सम्बद्ध थे। देशी भाषा भाषी राष्ट्रवादी बुद्धिजीवी वर्ग व्यक्तिगत स्वतंत्रता की अपेक्षा "ब्रिटिश शासन से भारतीय लोगों की सामूहिक स्वतंत्रता" की समस्या से अधिक चिन्तित थे। भारतीय राष्ट्रवाद अभिजात वर्गों को अधीनीकरण के संदर्भ में समानता, स्वतंत्रता और स्वायत्तता के अधिक उदार विचारधाराओं का सामना करना पड़ा और इसलिए राष्ट्रीय प्रभुसत्ता से उनका अधिक तात्कालिक संबंध था इसलिए उन्होंने इन विचारों को अपने स्वयं के मुद्दों में अंतरित करना उचित समझा। यहाँ हम दूसरी विशेषता देखते हैं, कविराज का तर्क है कि उदार विचारधारा का "भारतीय राजनीतिक तर्कों पर गहन और गंभीर प्रभाव" था परन्तु यह प्रभाव ऐसा नहीं था जो उदार विचारों पर हावी हुआ हो परन्तु राष्ट्रवादियों पर हुआ है। यह छोटा या सतही मतभेद नहीं था, परन्तु महत्वपूर्ण था जैसा कि कविराज उल्लेख करता है, राष्ट्रों और समाजों के बीच विचारों की समानता राष्ट्रीय समुदाय में आंतरिक समानता के विचार आड़े आ सकते हैं। इसलिए गांधीजी जैसे कुछ व्यक्ति भी सरलता से जाति प्रथा को उचित मान सकते हैं, ब्रिटिश से जब राष्ट्रीय समानता और स्वतंत्रता का दावा करते हैं।

2.3.4 भिन्न अनुक्रम और भिन्न आधुनिकता

कविराज के अनुसार, यह दूसरी विशेषता भी तीसरी से जुड़ी हुई हैंः भारत में आधुनिकता ने बहुत भिन्न अनुक्रम में पश्चिम की आधुनिकता का अनुसरण किया। कविराज कहता है कि आधुनिकता ऐतिहासिक समूह है जिसमें तीन विशिष्ट प्रक्रियाएँ हैंः पूंजीपति औद्योगिक उत्पादन, उदार लोकतन्त्र की राजनीतिक

संस्थाएँ और ऐसे समाज का आविर्भाव जहाँ पुराने सामुदायिक बंधन समाप्त हो गए हों और वैयक्तिकता की प्रक्रिया आरंभ हो गई हों। इसका अभिप्राय है कि संबंध के पुराने रूपों में स्थान पर नए हित आधारित संघों का आविर्भाव हुआ है। यह है जिसे राजनीतिक सिद्धान्त में कहा जाता है, "सिविल समाज का स्थान"। पश्चिम के ऐतिहासिक प्रक्षेप पथ में लोकतन्त्र का आविर्भाव तब हुआ जब अन्य दो प्रक्रियाएँ उच्च मात्रा में विकसित हो गई थी। उदाहरण के लिए, श्रमजीवी वर्ग का प्रारंभिक आत्मनियंत्रण उस संदर्भ में हुआ, जहाँ लोकतांत्रिक प्रतिरोध की कोई संभावना नहीं थी। वास्तव में, लोकतांत्रिक आकांक्षाएँ कम से कम आंशिक रूप में पूंजीपति औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया के परिणाम थे। दूसरी ओर, भारत में लोकतन्त्र और संसदीय संस्थाओं से पहले अन्य दो प्रक्रियाएँ हुई थीं। कविराज इस भिन्न अनुक्रम को उस प्रकार की जनवादी राजनीति से जोड़ता है जो भारत में और बहुत से उपनिवेशोत्तर देशों में राजनीतिक दृश्य पर शासन करने आता है।

यही वह समस्या है जिसे पार्थ चटर्जी ने "राजनीतिक समाज" संबंधी अपने विचारधारा में हाल ही में व्यक्त की है। चटर्जी का तर्क है कि पश्चिम में जिसे सिविल सोसाइटी कहा जाता है, वह व्यक्तिवादी अधिकारधारी नागरिक का अधिकार क्षेत्र है, वह स्वच्छन्द प्रवेश और विकास तथा व्यक्तिगत स्वायत्तता के नियमों द्वारा शासित होती है। उसका सुझाव है, ग़ैर-पश्चिमी समाजों को सिविल सोसाइटी के इस अधिकार क्षेत्र के बीच स्थायी कमी द्वारा व्यक्त किया जाता है जो पश्चिमी आधुनिकता के नियामक आदर्शों और समाज के उस विशाल क्षेत्र द्वारा शासित किया जाता है जो "जनसंख्या" के रूप में विकासात्मक राज्य से संबंधित होता है परन्तु राज्य की नीति इसमें हस्तक्षेप कर सकती है। यहाँ अधिकारों की किसी भी धारणा के बदले सरकार का उत्तरदायित्व होता है जो वह आधार प्रदान करता है जिससे इन समुदायों से समझौता करने का दावा कर सकते हैं। हम जैसा कि चटर्जी ने विस्तार से वर्णन किया है, इस अवधारणा पर लम्बी चर्चा नहीं कर सकते हैं, परन्तु यह नोट करना महत्वपूर्ण है कि उसके अनुसार "राजनीतिक समाज" के महत्वपूर्ण निर्धारक विशेषताओं में से एक ऐसा अधिकार क्षेत्र है जहाँ समुदाय के विचार अभी भी शक्तिशाली प्रभाव रखते हैं – परन्तु व्यक्तिक विचारों का प्रभाव नहीं होता है जो सिविल सोसाइटी के निर्धारक विशेषताओं को पारिभाषित करता है। चटर्जी और कविराज जैसे विद्वानों के तर्क है कि ग़ैर पश्चिमी आधुनिकता की इस अनूठी विशेषता को "कमी" या "अल्प विकास" या "अधूरी आधुनिकता" के रूप में नहीं समझा जाना चाहिए। बल्कि उन्हें विशिष्ट तरीके में देखा जाना चाहिए जिसमें उपनिवेशी संदर्भ में आधुनिकता बनाई गई है। इसका इतिहास पश्चिमी आधुनिकता से भिन्न है और भिन्न भविष्य होने की भी संभावना है।

2.4 राष्ट्रवाद, इतिहास और विजित ज्ञान

यह मानते हुए कि अभी तक हमने राष्ट्रवाद के बारे में विचार किया है कि केवल एक ही सत्व थी जो राष्ट्रवाद कहलाता था और वह भारतीय राष्ट्रवाद था। जैसा कि यह होता है न तो एक ही राष्ट्रवाद था और न ही उस मामले के लिए एक ही भारतीय राष्ट्रवाद था। उदाहरण के लिए, हम जानते हैं कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने एक प्रकार का भारतीय राष्ट्रवाद अपनाया था जिसे हम "धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवाद" कह सकते हैं। हम यह भी जानते हैं कि मुस्लिम लीग ने कम से कम लगभग 1940 से आगे पाकिस्तानी राष्ट्रवाद अपनाया। इसे प्रायः "दो राष्ट्र सिद्धान्त" कहा जाता है। यह विनायक दामोदर सावरकर, जैसे किसी व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत किया गया, जो स्पष्ट रूप से हिन्दू भारतीय राष्ट्रवाद के लिए दृढ़ थे। उदाहरण के लिए, हम यह भी जानते हैं कि यह बंगाली राष्ट्रवाद, असमी राष्ट्रवाद, मलयी राष्ट्रवाद और इसी प्रकार के अन्य राष्ट्रवादों के राष्ट्रवादी अवधि के दौरान था। प्रश्न यह है कि यदि भारत नाम की कोई वस्तु/राष्ट्र पहले ही विधमान था तो हम इस तथ्य को कैसे मान सकते हैं कि इतने अधिक लोगों ने इसे इतने अधिक भिन्न भिन्न तरीक़े में देखा? सुदीप कविराज अपने सुपरिचित निबंध

"इमेजिनरी इंस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया" में इस प्रश्न के उत्तर देते हुए यह दावा करते हैं कि जिस भारत के बारे में आज हम किसी समस्या के बिना बात करते हैं, वह वास्तव में खोज नहीं थी, यह अन्वेषण था। इसे खोज कहकर जैसा नेहरू ने अपनी पुस्तक *डिस्कवरी ऑफ इंडिया* में किया, हम इसका आशय यह निकालते हैं कि "यह पहले से ही यहाँ था", संभवतः अति प्राचीन समय से था। यदि आज आपसे पूछा जाता है, भारत क्या है, तो आप संभवतः उसकी भौगोलिक सीमाएँ, कश्मीर से कन्याकुमारी तक और बंगाल की खाड़ी से अरब सागर तक का वर्णन करेंगे। आप उसकी भिन्न भिन्न भाषायी, धार्मिक, जाति और जनजाति समूहों का जो इस भूमि में निवास करते हैं, उनका विवरण देंगे। आप संभवतः यह भी कहेंगे कि इस सब के होते हुए भी भारत "अनेकता में एकता" का प्रतिनिधित्व करता है। और फिर भी यदि आपको कहा जाता है कि उन्नीसवीं शताब्दी से पहले कोई भी व्यक्ति ठीक ठीक इस भूमि की भौतिक लम्बाई भी नहीं जानता था और कि हमारे पूर्वजों को कोई जानकारी नहीं थी कि प्रत्येक समुदाय में कितने लोग थे। तब भारत का क्या चित्र था जिसका अनुमाप आप लगाएँगे? प्रारंभिक राष्ट्रवादियों ने अपने भारत का चित्र कैसे खींचा होगा?

2.4.1 उन्नीसवीं शताब्दी में भारत का निर्माण

उदाहरण के लिए, इस तथ्य को लें कि भारत के पहले अंतरिम मानचित्र (उस समय भारत का नाम भी विद्यमान नहीं था) 1782 और 1788 के बीच बंगाल में उपनिवेशी अधिकारी, जेम्स रेनेल द्वारा तैयार किया गया था। यह केवल 1818 तक हुआ था कि उपमहाद्वीप का विशाल भाग ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधिकार में आ गया था। इस भूमि के भौगोलिक भाग का विचार उभरने लगा। यह केवल उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ था कि "भारत" नाम के भौगोलिक सत्ता के विचार को दृढ़ता मिली। मैथ्यू इडनी ने भारत के मानचित्रण का प्रलेखन और विश्लेषण किया। उसके अनुसार "भारत के एक समान और विस्तृत पुरालेख के निर्माण में ब्रिटिश ने क्षेत्र के राज्य क्षेत्रों की गुंजाइश और स्वरूप निश्चित किया। उन्होंने पहाड़ों के भौतिक प्राकृतिक दृश्यों के अंदर गाँवों, किलों की आबादी, सड़कों, सिंचाई योजनाओं और सीमाओं का पता किया और उनका मानचित्रण किया .....।" उन्नीसवीं शताब्दी में भारत की पहली जनगणना की गई और केवल 1881 में पहली विस्तृत जनगणना की गई। तब यह विचार था कि वहाँ रहने वाले लोगों के भिन्न-भिन्न समुदायों की जानकारी और उनकी संख्या उपलब्ध हो सके। परन्तु यही सब कुछ नहीं था, यह केवल इतना भर नहीं था कि ब्रिटिश ने उद्देश्यपरक तरीके में भूमि के बारे में सूचना संकलित की। भारतीय उपमहाद्वीप जैसे विशाल भूक्षेत्र की विशाल जनसंख्या की गणना करना और उसे अर्थमूलक बनाने के लिए उन्हें जनसंख्या को भिन्न-भिन्न समूहों में वर्गीकृत करना था। चूँकि समुदाय के बारे में कोई स्पष्ट मत नहीं था, इसलिए ब्रिटिश ने वर्गीकरण के प्रयोजन के लिए अपने ही तरीके अपनाए। बड़ी श्रेणियाँ, जैसे 'हिन्दू' और 'मुस्लिम' तथा वे जातियाँ भी (जिसमें हजारों जातियों को रखा गया) मुख्यतया जनगणना के लिए थे। यह यद्यपि धार्मिक प्रभुत्व नहीं था, जनगणना से पहले जातियाँ विद्यमान नहीं थी परन्तु ऐसे अस्पष्ट क्षेत्र थे जिनका आसानी से वर्गीकरण नहीं किया जा सकता था। इन सैकड़ों श्रेणियों को कम कर कुछ में ही किया जाना था। इस प्रयोजन के लिए उनकी सीमाएँ ठीक-ठीक परिभाषित की जानी थी। ऐसा करने में उपनिवेशी शासन ने, वास्तव में, नई श्रेणियाँ बनाई और उन्हें कुछ निश्चित तरीके में रखा, जैसा कि अब काफी ऐतिहासिक कार्य दिखाता है। यह ऐसा मामला नहीं है जिसपर हम यहाँ विस्तार से चर्चा कर सकते हैं परन्तु कुछ तथ्यों को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

कविराज ने अपने उपर्युक्त लेख में जिसे वह "अस्पष्ट" और "गिनती किए गए" समुदाय कहता है, इनके बीच अंतर किया है। कई तरीकों में एक तरीका है जिसमें गणना और वर्गीकरण ने उस तरीके को बदला जिसमें समुदाय विद्यमान है, इन तरीकों को कविराज ने इस अंतर में पाया कि आधुनिक पूर्व अवधि में व्यक्तियों ने अस्पष्ट समुदायों में अपनी पहचान की भावना को तय नहीं किया था परन्तु

उसका अभिप्राय यह नहीं था कि उनमें पहचान की कोई भावना ही नहीं थी। उसका तर्क है कि व्यक्ति उपयुक्त अवसरों पर अपने आपको वैष्णव, बंगाली कह सकते हैं या कायस्थ, ग्रामवासी आदि हो सकते हैं। परन्तु इनमें से कुछ भी उनकी पहचान का पूरा विवरण नहीं हो सकता है। उनमें से प्रत्येक विशिष्ट परिस्थितियों में अपना आचरण परिभाषित कर सकता है परन्तु यह एक तरीके में आधुनिक गणना किए गए समुदायों की पहचान से पूर्णतः भिन्न था। यह केवल तब था जब एक ही पहचान नियत की गई थी कि वे यह पूछना शुरू करने लगें, जैसा आधुनिक समुदाय करते हैं, विश्व में कितने थे, सार्वजनिक संस्थाओं में उनका क्या प्रतिनिधित्व था, उनके साथ भेदभाव कैसे किया जा रहा था आदि। इसलिए जैसा कि दीपेश चक्रवर्ती दावा करते हैं "1890 के दशक तक हिन्दू और मुस्लिम नेता यह सिद्ध करने के लिए एक दूसरे पर जनगणना आँकड़े उद्धृत करते थे कि उन्हें ब्रिटिश शासन से उनके वैध लाभों का भाग (जैसे रोज़गार और शिक्षा) प्राप्त करने का अधिकार था या नहीं।" इस दृष्टि से बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक की आधुनिक धारणा और अन्य इसी प्रकार के प्रश्न केवल इस प्रकार के गणना में किए गए समुदायों से प्रस्तुत करना संभव होता है यह इस दृष्टिकोण से है कि ज्ञानेन्द्र पांडेय ने अपने कंस्ट्रक्शन आफ दी कम्यूनलिज्म इन कालोनियल नार्थ इंडिया में कहा है, यद्यपि उपनिवेशवाद से पहले हिन्दुओं और मुसलमानों में साम्प्रदायिक संघर्ष थे, वे सामान्यतया बहुत से भिन्न भिन्न प्रकार से स्थानीय संघर्ष थे। वें आधुनिक दृष्टि से साम्प्रदायिक नहीं थे क्योंकि पहले स्थान में "समुदाय" का कोई अर्थ नहीं था। वह कहता है कि किसी भी दशा में उपनिवेशी व्यवहार और ज्ञान ने भारतीय समाज में इस अंतर को अनिवार्य रूप में अंकित करने से पहले अखिल भारतीय हिन्दुओं और मुसलमानों की कोई ऐसी भावना नहीं थी। उदाहरण के लिए, हम देख सकते हैं कि मुसलमानों की आबादी हिन्दुओं की आबादी से अधिक बढ़ रही है, इस कथन ने केवल बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक के विचार ने आकार लेना शुरू किया, इसे गणना और वर्गीकरण की पद्धति ने संभव बनाया।

प्रमुख लक्ष्यों में से एक जो तब उपनिवेशी सरकार की चर्चा से उभरा है, वह है, भारत के संबंध में हमारा विचार उसकी भौगोलिक सीमाएँ, उसकी जनसंख्या और उसका सांस्कृतिक संयोजन आदि सभी उपनिवेशी राज्य द्वारा उत्पन्न किए गए ज्ञान द्वारा बनाए गए थे। सबसे अधिक महत्वपूर्ण क्या है कि राष्ट्रवादी राजनीति सहित सभी अनुवर्ती राजनीति को इस ज्ञान से मूर्त रूप मिला। राष्ट्रवादी आन्दोलन की प्रारंभिक प्रावस्था में यह, वास्तव में, स्पष्ट नहीं था कि राष्ट्रवाद क्या था? उपनिवेशी शासन की आलोचना ठीक ही थीं। परन्तु तब भारत नाम के पूर्णतः परिभाषित राष्ट्र की ओर से यह आलोचना नहीं की गई थीं। जैसा कि बहुत से अध्ययनों ने दिखाया है, प्रायः बंगाली राष्ट्रवाद या असमी राष्ट्रवाद था और ऐसा कोई अन्य जिन्हें उपनिवेश विरोध अभिजात वर्ग की पहली पहचान की गई थी। चूँकि भारत का विचार अधिक गहरा हो गया था और इसकी सीमा रेखाएँ अधिक स्पष्ट रूप से परिभाषित हो गई थी, इसलिए राष्ट्रवाद शीघ्र ही नए भावी राष्ट्र के आदर्श उम्मीदवार के रूप में यह भारत अपनाया गया।

2.4.2 राष्ट्रवादी कल्पना और भारत का इतिहास

तथापि एक समस्या थी। राष्ट्र के रूप में किसी प्रकार की वैधता के लिए सत्ता का दावा इतनी जल्दी कोई कैसे कर सकता है? राष्ट्रत्व के इसी विचार के लिए आवश्यक है कि नया राजनीतिक समुदाय प्राचीन इतिहास का दावा करें। इसलिए उन्नीसवीं शताब्दी के बहुत बड़े भाग के लिए प्रारंभिक राष्ट्रवादियों ने भारत के इतिहास की खोज करने के लिए अथक परिश्रम किया। जैसा कि कविराज कहता है, इस अवधि में विशेषकर बंगाल में, "इतिहास सभी जगह प्रकट हुआ है।" महत्वपूर्ण विचारकों, जैसे बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय ने दावा किया कि "हमारा इतिहास होना चाहिए।" वास्तव में, बंकिम इसे अधिक प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करता है कि "यहाँ तक कि जब वे चिड़ियों का शिकार करते थे, साहेब (अर्थात् ब्रिटिशर्स) तब भी अपना इतिहास लिखते हैं, परन्तु हाय, बंगालियों का कोई इतिहास

नहीं है।" ध्यान दें कि उस अवस्था में भी बंकिम केवल बंगाल और अपने राष्ट्र के रूप में बंगाली की ही सोच रहा था, फिर भी इतिहास होने की इच्छा सशक्त थी।" इतिहास के लिए इस खोज का क्या अभिप्राय है? क्या यह अभिप्राय है कि बंगालियों और भारत का कोई अतीत नहीं था? निश्चय ही यह ऐसा मामला नहीं था। परन्तु जैसा कि सभी आधुनिकता पूर्व संस्कृतियों में अतीत से संबंध भिन्न प्रकार का था। यह क्या था, उसने ही अतीत के पिछले विवरणों से आधुनिक तात्पर्य में भिन्न इतिहास बनाया। यदि हम उन विवरणों को देखें जो उपनिवेश पूर्व अवधि में उपलब्ध हैं तो वे या तो राजाओं की वंशावलियाँ हैं या वे किसी खास घटनाओं के मौखिक संप्रेषित कहानियाँ हैं। यदि इतिहास होना है तो इसके लिए समुदाय होना चाहिए, गणनायुक्त समुदाय होना चाहिए जिसका इतिहास होना चाहिए। अधिक प्रमाणिक और दृढ़ता से परिभाषित समुदाय या लोग होने चाहिए जिनका तब इतिहास लिखा जा सके। यह भावना तब उठी जब "भारत" का विचार ठोस वास्तविकता बना, उपर्युक्त उपनिवेशी सरकार की पद्धतियों के आभारी हैं। भिन्न-भिन्न वर्णों के राष्ट्रवादियों के अधिकांश प्रयास इस दिशा में थे कि राजनीतिक समुदाय को परिभाषित किया जाए ताकि भारत कहे जाने वाले भू-भाग के भीतर सभी विविध तत्वों का समावेश किया जाए। और इस भारत का इतिहास होना चाहिए। भारत का इतिहास लिखने के संसाधन कहाँ से आए थे?

2.4.3 प्राच्यवाद और उपनिवेश का अपना ज्ञान

यह सुविदित है कि भारत के बारे में शैक्षिक जानकारी, अर्थात् उसका इतिहास अठारहवीं शताब्दी के अंत में और उन्नीसवीं शताब्दी में महान प्राच्यविदों के प्रयासों से लिखा गया था। ब्रिटिश प्राच्यविदों, जैसे विलियम जॉन द्वारा 1784 में एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल की स्थापना को इस प्रयास में मील के पत्थर के रूप में माना जा सकता है। उदाहरण के लिए, ओ.पी. केजरीवाल का *'दी एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल एण्ड दी डिस्कवरी ऑफ इंडियाज पास्ट भारत* के अतीत के उत्खनन में अग्रणीय संस्था का हाथ है, केजरीवाल ने जब 1834 में एशियाटिक सोसाइटी के काम की देखभाल करनी आरंभ की, उस समय तक प्राचीन सम्राटों, जैसे समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त मौर्य के नामों को कोई भी व्यक्ति नहीं जानता था। यह यहाँ तक कुछ उत्तेजना के साथ उल्लेख करता है, "मैंने ज्ञात किया कि यहाँ तक कि अशोक और कनिष्ठ भी, उनके राजवंश का उल्लेख करना तो दूर की बात है, लोगों के लिए उनके नाम, तब तक अज्ञात थे, जब तक सोसाइटी का कार्य प्रकाश में नहीं आया।" आगे वह कहता है कि उसके लिए यह देखना आश्चर्यजनक था कि यहाँ तक कि कुछ अन्य ज्ञात राजवंशों, जैसे पलास, सेना, मौरवरी, बलभी और अन्य उन्नीसवीं शताब्दी तक अज्ञात थे, एशियाटिक सोसाइटी के विद्वानों द्वारा उन्हें प्रकाश में लाया गया। यहाँ पर भारत के इतिहास खोज संबंधी उन्नीसवीं शताब्दी के प्राच्य विद्वानों द्वारा किए गए विशाल कार्य पर चर्चा करना संभव नहीं है। हमारे लिए ध्यान देना आवश्यक क्या है, वह है कि यदि ठीक उन्नीसवीं शताब्दी तक जिसे हम आज भारत के "प्राचीन राष्ट्र" के रूप में जानते हैं, उसका स्पष्ट भौगोलिक रूप नहीं था, जो उसमें रहते थे, उनकी भिन्न-भिन्न संस्कृतियाँ और समुदायों का विवरण हमारे पास नहीं था, इतिहास नहीं था तब यह क्या जिसने यह कहानी संभव बनाई जिसे हम आज जानते हैं – कि 'भारत' एक प्राचीन राष्ट्र है जिसका गुप्त और मौर्य साम्राज्य के समय स्पष्ट स्वर्ण युग था और आदि? विद्वानों द्वारा यहाँ पर यह प्रश्न उठाया गया था जिस विषय पर हम ऊपर चर्चा कर रहे हैं, वह भारत है जो अन्य राष्ट्रों की भांति अपेक्षाकृत नए और आधुनिक सत्ता है। अन्य राष्ट्रों की भांति, यह सामूहिक कल्पना का कार्य है जिसने उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से आगे कार्य किया जिसने महान और प्राचीन सभ्यता का वर्णन प्रस्तुत करने के लिए प्राच्य विद्या के विद्वानों द्वारा किए गए कार्य का बहुत निपुणता से अपनाया। यह राष्ट्रवादियों की कल्पना थी जिसने राष्ट्र का इतिहास तैयार किया था जिसमें भिन्न-भिन्न सत्ताओं के सभी अलग अलग इतिहास थे जो आज भारत नाम के भू-क्षेत्र का भाग बनाते हैं, और यह भारत के इतिहास रूप में बना है। इसलिए जब

उन्नीसवीं शताब्दी के राष्ट्रवादियों जैसे बंकिमचन्द्र ने इतिहास की आवश्यकता सिद्ध की, वास्तव में उन्होंने इस आधुनिक, बुद्धिवादी प्रकार के इतिहास की आवश्यकता पर जोर दिया। इसलिए दृष्टान्त के बारे में कुछ अन्य सोचना उचित है। कविराज के दावा में भारत के इतिहास में सातवाहन या सिन्धु घाटी सभ्यता के इतिहास के समावेशन में कुछ विदेशीपन शामिल है। या वर्तमान भौगोलिक सीमाओं के आधार पर क्या हम तब सिन्धु घाटी सभ्यता और मोहनजोदड़ो का दावा कर सकते हैं क्योंकि वे इस समय पाकिस्तान में हैं? दूसरे शब्दो में, सम्पूर्ण पिछले इतिहास को वर्तमान भारत के राष्ट्रीय इतिहास के भाग के रूप में दावा करने का प्रयास किस प्रकार तर्क संगत है?

अब यह तथ्य है कि "उन्नीसवीं शताब्दी से पहले 'हमारे पास कोई इतिहास नहीं था" इसका अभिप्राय यह नहीं समझा जाना चाहिए कि 'हम' में अतीत से कोई भावना या संबंध नहीं था। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दियों के राष्ट्रवादियों ने भी इसे हमारे पिछड़ेपन के चिह्न या "कर्मों" के रूप में देखा जिसने यह सिद्ध किया कि हम आधुनिक नहीं थे। यहाँ एक महत्वपूर्ण दृष्टान्त ध्यान में रखा जाना चाहिए। एक तरीका जिसमें पश्च संरचनावाद ने पश्चिमी संरचनावाद की सहज बुद्धि ने यह प्रश्न किया कि एकमात्र और रेखीय विकास के रूप में "मानव इतिहास" की उसकी धारणा को चुनौती देकर ज्ञानोदय हुआ है। उदाहरण के लिए, हम जानते हैं कि निचले स्तर से उच्चतर स्तर में प्रगति की कहानी के रूप में मानव इतिहास की कहानी आधुनिक ऐतिहासिक चेतना का आधार रही है। संरचनावाद-पश्च ने अन्य बातों के साथ-साथ इस विचार को चुनौती दी कि अतीत के बारे में केवल एक ही तरीका हो सकता है और वह है, ऐतिहासिक तरीका। फिर प्रश्न यह नहीं है कि हम यहाँ विस्तार से चर्चा करें बल्कि यह ध्यान रखना उपयोगी है कि इस प्रकार की ऐतिहासिक आत्मचेतना आधुनिक परिकलित समुदायों की विशेषता है जो लगातार अपनी और अन्य के संबंध में सामूहिक स्पष्टीकरण देने की आवश्यकता महसूस करते हैं। यदि आधुनिक पूर्व समुदाय अपने अतीत के बारे में कोई तर्क सम्मत जानकारी देना आवश्यक नहीं समझते हैं तो इसका केवल मात्र कारण हैं कि विश्व उनके अस्तित्व के तौर तरीके ऐसे हैं कि वे क्या हैं, यह दिखाना आवश्यक नहीं मानते हैं। इस प्रकार के समुदायों में समय की धारणा काल्पनिक काल और जीवनकाल के बीच को स्पष्ट अंतर नहीं करते हैं। कई तरीकों में एक तरीके का इतिहास और ऐतिहासिक काल की इस समझ को उपनिवेशों में जीवन प्रभावित किया है, यह अभी प्रभावित कर रहा है, वह सभी समाजों के खास ऐतिहासिक यात्रा प्रारम्भ करता है, जैसे कि वे एक ही सत्व हो। उस कहानी में यूरोप ऐसा स्थान प्रतीत होता है जहाँ इतिहास है, क्योंकि यह प्रगति के मानदंड में सबसे आगे हैं। तब सभी समाजों ने अपने आधार पर यूरोपीय इतिहास का प्रतिदान किया। उपर्युक्त कार्यों से एक शिक्षा यह है कि हमें अपना इतिहास स्वयं लिखना शुरू करना चाहिए न कि यूरोप को अस्वीकृत कर, बल्कि इसे और इसके इतिहास को नकारते हुए सार्वदेशिक प्रस्थिति को स्वीकार करना चाहिए जिसे इसने अर्जित किया है।

2.5 सारांश

इस इकाई में प्राच्यवाद (आरंभिक चिंतन) की अवधारणा और आधुनिकता के प्रश्न तथा भारत में इसकी औपनिवेशिक जड़ों पर चर्चा की गई है। यह अब तुलनात्मक रूप में विफल अध्ययन है और पूर्व उपनिवेशों तथा उनके मूलभूत उपनिवेशी मालिकों दोनों के लिए नई और गहरी जानकारी प्रदान की है। उदाहरण के लिए, यह विचार कि अकेला यूरोप का इतिहास संदर्भ का विषय नहीं हो सकता है जब पिछले उपनिवेशों के इतिहास लिखे जा रहे हों।

इकाई में विषय पर भिन्न भिन्न विचारधाराओं के विद्वानों की चर्चा का उल्लेख है। नव गांधीवादी विचारधारा पराश्रित अध्ययन विचारधारा, संयुक्त राज्य आधारित मानव वैज्ञानिक अध्ययन और एडवर्ड सईद के प्राच्यवाद में चार श्रेणियाँ हैं जिनका विश्लेषण किया गया है। एक अगला प्रयास राष्ट्रवाद और

उपनिवेशी आधुनिकता के प्रश्नों का विश्लेषण करना है। यहाँ यह विवेचन किया गया है कि पूर्ववर्ती उपनिवेशों में विकसित राष्ट्रवाद किस तरीके में यूरोप में उसके विकास से भिन्न किस प्रकार है। इकाई का अंतिम अनुभाग में यह विश्लेषण किया गया है कि जैसा कि हम आज जानते हैं, भारत का विचार औपनिवेशिक भारत के राष्ट्रवादी इतिहासकारों द्वारा कैसे संकल्पित और विकसित किया गया था।

2.6 अभ्यास प्रश्न

1) औपनिवेशिक आधुनिकता के प्रश्न पर विद्वानों में भिन्न भिन्न विचारधाराओं की चर्चा कीजिए।

2) प्राच्यवाद और औपनिवेशिक कथन के संबंध में राष्ट्रवाद की चिन्ता स्पष्ट कीजिए।

3) उदार विचारों के संदर्भ में राष्ट्रवाद और उसकी विशेषताओं की चर्चा कीजिए।

4) उन्नीसवीं शताब्दी में भारत के निर्माण की आलोचनात्मक विवेचन कीजिए।

5) प्राच्यवाद और उपनिवेश के आत्म ज्ञान की चर्चा कीजिए।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY